स्वरूप संबोधन

अनुक्रमणिका

001) मंगलाचरण
002) परम-तत्त्व का निरूपण
003) आत्मा कथंचित चेतन
004) आत्मा कथंचित ज्ञान
005) आत्मा कथंचित विश्व-व्यापि
006) जीव में एक-अनेकता
007) जीव सहज ही वाच्य-अवाच्य
008) जीव स्वयं से अस्ति-नास्ति, मूर्तिक-अमूर्तिक
009) संसार और मुक्ति का कारण जीव स्वयं
010) अंतरंग-बहिरंग कारणों के सद्भाव से ही मुक्ति प्राप्ति
011) मुक्ति का अंतरंग कारण और सम्यग्दर्शन का लक्षण
012) सम्यग्ज्ञान का लक्षण
013-014) चारित्र का स्वरूप
015) मुक्ति में बहिरंग कारण
016) राग-द्वेष रहित होकर सतत आत्म-भावना की प्रेरणा
017) कषाय आत्माराधना में बाधक
018) तत्त्व-भावना के और भी उपाय
019) हेय-उपादेय में निर्णय और कर्तव्य
020) भेद-ज्ञान पूर्वक उपेक्षा मुक्ति का कारण
021) निज-आत्म-तत्त्व में आसक्ति भी मुक्ति में बाधक
022) यह कैसे
023) उपेक्षा मोक्ष देने में समर्थ कैसे है?
024) पुन: और भी आत्मा में प्रवृत्ति कराते हैं
025) आत्म-तत्त्व की प्राप्ति में षट्-कारक स्वतंत्रता

!! श्रीसर्वज्ञवीतरागाय नम: !!
श्रीमद्-भगवत्अकलंक-आचार्यदेव-प्रणीत
श्री
स्वरूप-संबोधन
मूल संस्कृत गाथा,
आभार :
!! नम: श्रीसर्वज्ञवीतरागाय !!
ओंकारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः
कामदं मोक्षदं चैव ॐकाराय नमो नम: ॥1॥
अविरलशब्दघनौघप्रक्षालितसकलभूतलकलंका
मुनिभिरूपासिततीर्था सरस्वती हरतु नो दुरितान् ॥2॥
अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जनशलाकया
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नम: ॥3॥
॥ श्रीपरमगुरुवे नम:, परम्पराचार्यगुरुवे नम: ॥
सकलकलुषविध्वंसकं, श्रेयसां परिवर्धकं, धर्मसम्बन्धकं, भव्यजीवमन: प्रतिबोधकारकं, पुण्यप्रकाशकं, पापप्रणाशकमिदं शास्त्रं श्री-स्वरूप-संबोधन नामधेयं, अस्य मूल-ग्रन्थकर्तार: श्री-सर्वज्ञ-देवास्तदुत्तर-ग्रन्थ-कर्तार: श्री-गणधर-देवा: प्रति-गणधर-देवास्तेषां वचनानुसार-मासाद्य आचार्य श्री-भगवत्अकलंक-आचार्यदेव विरचितं ॥
॥ श्रोतार: सावधान-तया श‍ृणवन्तु ॥
मंगलं भगवान् वीरो मंगलं गौतमो गणी
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो जैनधर्मोऽस्तु मंगलम् ॥
सर्वमंगलमांगल्यं सर्वकल्याणकारकं
प्रधानं सर्वधर्माणां जैनं जयतु शासनम् ॥

मंगलाचरण

मुक्तामुक्तैकरूपो यः, कर्मभिः संविदादिना ।
अक्षयं परमात्मानं, ज्ञानमूर्तिं नमामि तम् ॥1॥
अन्वयार्थ : [यः] जो, [कर्मभिः संविदादिना] कर्मों से तथा सम्यग्ज्ञान आदि से क्रमशः, [मुक्तामुक्तैकरूपः] मुक्त और अमुक्त होता हुआ एक-रूप है, [तम्] उस, [अक्षयं] अविनाशी, [ज्ञानमूर्तिं] ज्ञानमूर्ति, [परमात्मानं] परमात्मा को, (मैं भट्ट-अकलंक) [नमामि] नमस्कार करता हूँ ॥१॥

परम-तत्त्व का निरूपण

सोऽस्त्यात्मा सोपेपयोगोऽयं क्रमाद्धेतुफलावहः ।
यो ग्राह्योऽग्राह्यनाद्यन्तः स्थित्युत्पत्तिव्ययात्मकः ॥2॥
अन्वयार्थ : [सोपयोगः] (दर्शन-ज्ञान) उपयोगयुक्त, [क्रमात्] क्रम से, [हेतुफलावहः] कारण और कर्ता, [ग्राहय्:] ग्रहण करने योग्य और [अग्राहय्] ग्रहण नहीं करने योग्य, [अनाद्यनन्तः] अनादि और अनन्त है, [स्थित्युत्पत्तिव्ययात्मकः] उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य रूप [सो आत्मा अस्ति अयं] ऐसा यह आत्मा है ।

आत्मा कथंचित चेतन

प्रमेयत्वादिभिर्धर्मैरचिदात्मा चिदात्मकः ।
ज्ञानदर्शनतस्तस्माच्चेतनाचेतेतनात्मकः ॥3॥

अन्वयार्थ : (वह आत्मा) [पम्रेयत्वादिभिः धर्मैः] प्रमेयत्व आदि धर्मों के द्वारा, [अचिदात्मा] अचेतन-रूप है, [ज्ञानदर्शनतः] ज्ञान और दर्शन-गुण से, [चिदात्मकः] चेतन-रूप है, [तस्मात्] इस कारण, [चेतनाचेतनात्मकः] चेतन-अचेतनात्मक है ॥३॥

आत्मा कथंचित ज्ञान

ज्ञानाद्-भिन्नो न चाभिन्नो, भिन्नाभिन्नः कथंचन ।
ज्ञानं पूर्वापरीभूतं, सोऽयमात्मेति कीर्तितः ॥4॥

अन्वयार्थ : [पूर्वापरीभूतं ज्ञानं] पूर्वोत्तर ज्ञान से संपन्न [स अयं आत्मा] वह यह आत्मा [ज्ञानात्] ज्ञान से [भिन्नः न] भिन्न नहीं है [च] और [अभिन्नः न] अभिन्न नहीं है, [कथंचन] कथंचित (किसी अपेक्षा से) [भिन्नाभिन्नः] भिन्न और अभिन्न है, [इति कीर्तितः] इस प्रकार कहा है ॥४॥

आत्मा कथंचित विश्व-व्यापि

स्वदेहेहप्रमितश्चायं, ज्ञानमात्रोऽपि नैव सः ।
ततः सर्वगतश्चायं, विश्वव्यापी न सर्वथा ॥5॥

अन्वयार्थ : [अयं] यह (आत्मा) [स्वदेहप्रमितः] अपने शरीर के बराबर है [च] और [सः] वह आत्मा [ज्ञानमात्रः अपि] ज्ञान मात्र भी [नैव] नहीं है, [ततः] इस कारण [सर्वगत:] सर्वगत (ज्ञान द्वारा) होता हुआ भी [अयं] यह (आत्मा) [विश्वव्यापी न सर्वथा न] सर्वथा समस्त जगत् में व्यापने वाला नहीं है ॥५॥

जीव में एक-अनेकता

नानाज्ञानस्वभावत्वादेकोऽनेकोऽपि नैव सः ।
चेतनैकस्वभावत्वादेकानेकात्मको भवेत् ॥6॥

अन्वयार्थ : [नाना-ज्ञान-स्वभावत्वात] अनेक प्रकार के ज्ञान-स्वरूप स्वभाव होने से [सः एक: अनेकः अपि नैव] वह एक (आत्मा) अनेक भी नहीं [चेतनैकस्वभावत्वात्] एक चेतना मात्र स्वभाव होने से [एकानेकात्मकः] एक-अनेकात्मक [भवेत्] है ॥६॥

जीव सहज ही वाच्य-अवाच्य

नावक्तव्यः स्वरूपाद्यैः, निर्वाच्यः परभावतः ।
तस्मान्नैकान्ततो वाच्यो, नापि वाचामगोचरः ॥7॥

अन्वयार्थ : वह आत्मा [स्वरूपाद्यैः] स्वरूप आदि की अपेक्षा से [अवक्तव्यः न] अवक्तव्य नहीं (वक्तव्य है) [परभावतः] अन्य अविवक्षित धर्मों की अपेक्षा से [निर्वाच्यः] आत्मा अवक्तव्य है [तस्मात्] इसकारण (आत्मा) [एकान्ततः] एकान्त से (सर्वथा) [न वाच्या] न वक्तव्य है [नापि] न ही [वाचामगोचरः] अवक्तव्य है ॥७॥

जीव स्वयं से अस्ति-नास्ति, मूर्तिक-अमूर्तिक

स स्याद्विधिनिषेधात्मा, स्वधर्म-परधर्मयोः ।
समूर्तिर्बोधमूर्तित्वादमूर्तिश्च विपर्ययात् ॥8॥

अन्वयार्थ : [सः] वह (आत्मा) [स्वधर्म-परधर्मयोः] स्व-धर्म और पर-धर्म में [क्रमशः विधिनिषेधात्मा] क्रमशः विधि और निषेध-रूप [स्यात्] होता है [सः] वह [बोधिमूर्तित्वात्] ज्ञान-मूर्ति होने से [मूर्तिः] मूर्तिरूप/साकार है [च] और [विपर्ययात्] विपरीत रूप वाला होने से [अमूर्तिः] अमूर्तिक है ॥८॥

संसार और मुक्ति का कारण जीव स्वयं

इत्याद्यनेकधर्मत्वं, बन्धमोक्षौ तयोः फलम् ।

आत्मा स्वीकुरुते, तत्तत्कारणैः स्वयमेव तु ॥9॥

अन्वयार्थ : [इत्याद्यनेकधर्मत्वं] इसप्रकार अनेक-धर्मी होने से [बन्धमोक्षौ] बन्ध-मोक्ष [तयोः] के [फलम्] फल (दुःख-सुख) को [तत्तत्कारणैः] उन-उनके कारणों द्वारा [आत्मा] आत्मा [स्वयमेव तु] स्वयं ही [स्वीकुरुते] स्वीकारता है ॥९॥

अंतरंग-बहिरंग कारणों के सद्भाव से ही मुक्ति प्राप्ति

कर्ता यः कर्मणां भोक्ता, तत्फलानां स एव तु ।

बहिरन्तरूपायाभ्यां, तेषां मुक्तत्वमेव हि ॥10॥

अन्वयार्थ : [कर्ता यः] जो कर्ता है [कर्मणां भोक्ता तत्फलानां स एव तु] वह ही कर्म और उनके फलों को भोगता है [बहिरन्तरूपायाभ्यां] बहिरंग और अन्तरंग उपायों द्वारा [तेषाम्] उन (कर्मों) का, [मुक्तत्वम् एव हि] छूट जाना भी उसी आत्मा को होता है ॥१०॥

मुक्ति का अंतरंग कारण और सम्यग्दर्शन का लक्षण

सद्-दृष्टिज्ञानचारित्रमृपायः स्वात्मलब्धये ।

तत्त्वे याथात्म्यसंस्थित्यमात्मनो दर्शनं मतम् ॥11॥

अन्वयार्थ : [स्वात्मलब्धये] अपना शुद्ध आत्म-स्वरूप प्राप्त करने के लिए [उपायः] अन्तरंग उपाय [सद्-दृष्टि-ज्ञान-चारित्रम्] सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र है [तत्त्वे] तत्त्वों में [यथात्म्यसंस्थित्यम्] स्वयं का भले प्रकार से निवास (श्रद्धान) [आत्मनः] आत्मा का [दर्शनं] सम्यग्दर्शन [मतम्] माना गया है ।

सम्यग्ज्ञान का लक्षण

यथावद्-वस्तु-निर्णीतिः सम्यग्ज्ञानं प्रदीपवत् ।

तत्स्वार्थव्यवसायात्मा कथंचित्प्रमितेः पृथक् ॥12॥

अन्वयार्थ : [यथावद् वस्तुनिर्णीतिः] ज्यों-का-त्यों वस्तु का निर्णयात्मक ज्ञान [सम्यग्ज्ञानं] सम्यग्ज्ञान कहलाता है [तत्] वह (सम्यग्ज्ञान) [प्रदीपवत्] दीपक के समान [स्वार्थ-व्यवसायात्मा] स्वयं के एवं ज्ञेयभूत पदार्थ के निश्चयात्मक-ज्ञान-रूप होता है [प्रमितेः] प्रमिति से [कथंचित् पृथक्] कथंचित् भिन्न भी होता है ।

चारित्र का स्वरूप

दर्शनज्ञान पर्यायेषूत्तरोत्तर भाविषु ।

स्थिरमालम्बनं यद्वा, माध्यस्थ्यं सुख-दुःखयोः ॥13॥

ज्ञातादृष्टाऽहमेकेकोऽहं, सुखे दुःखे न चापरः।

इतीदं भावनादाढ्र्यं, चारित्रमथवा परम् ॥14॥

अन्वयार्थ : [उत्तरोत्तरभाविषु] क्रम-क्रम से होने वाली [दर्शनज्ञानपर्यायेषु] सम्यग्दशर्न और सम्यग्ज्ञान की पर्याय में [स्थिरम्] स्थिरता का [आलम्बनम्] आलम्बन [यद्वा] अथवा [सुखदुःखयोः] सुख-दुःख में [माध्यस्थ्यं] माध्यस्थता (उदासीनता); [अहं] मैं [एकः] एकमात्र [ज्ञाता-दृष्टा] जानने-देखने वाला हूँ [च] और [अपरः] कोई दूसरा [सुखे-दुःखे न] सुखी-दुःखी नहीं करता [इति इदं] इसप्रकार की यह [भावनादाढ्र्यं] भावना की दृढ़ता [अथवा] या [परम्] उत्कृष्ट (स्वरूप-लीनता) [चारित्रम्] सम्यक्चारित्र है ।

मुक्ति में बहिरंग कारण

तदेतन्मूलहेतोः स्यात्कारणं सहकारकम् ।

यद्-बाह्यं देशकालादि तपश्च बहिरंगकम् ॥15॥

अन्वयार्थ : [तदेतन्मूलहेतोः] उस अन्तरंग (उपादान) मूल-हेतु (रत्नत्रय) रूप [कारणं] कारण का [सहकारकम्] सहकारी (साधन) [देशकालादिः] देश व काल आदि [च] और [तपः] तप [यत्] जो [बाह्नं] बाहर होने से [बहिरंगकम्] बहिरंग-कारण [स्यात्] है ।

राग-द्वेष रहित होकर सतत आत्म-भावना की प्रेरणा

इतीदं सर्वमालोच्य, सौस्थ्ये दौःस्थ्ये च शक्तितः।
आत्मानं भावयेन्नित्यं, रागद्वेषविवर्जितम् ॥16॥

अन्वयार्थ : [इतीदं] इस प्रकार इसका (कहे गए आत्म-स्वरूप को) [सर्वमालोच्य] पूर्णतया विचार कर [शक्तितः] यथा-शक्ति [सौस्थ्ये दौःस्थ्ये च] अनुकूलता और प्रतिकूलता में [रागद्वेषविवर्जितम्] राग-द्वेष रहित होकर [आत्मानं भावयेन्नित्यं] सदा आत्मा-भावना करनी चाहिए ॥१६॥

कषाय आत्माराधना में बाधक

कषायैः रंजितं चेतस्तत्त्वं नैवावगाहते ।
नीलीरक्तेऽम्बरे रागो, दुराधेयो हि कौंकुमः ॥17॥

अन्वयार्थ : [कषायैः रंजितं] कषायों (राग-द्वेष) से रंगा हुआ [चेतः] मन [तत्त्वं] तत्त्व (शुद्ध-आत्म-स्वरूप) को [नैवं] नहीं [अवगाहते] ग्रहण कर पाता; [नीलीरक्ते-अम्बरे] नीले रंग से रंगे हुए कपड़े को [कौंकुमः रागः] कुंकुम से रंगना [हि दुराधेयो] निश्चित ही कठिन है ।

तत्त्व-भावना के और भी उपाय

ततस्त्वं दोषनिर्मुक्त्यै, निर्मोहो भव सर्वतः।
उदासीनत्वमाश्रित्य, तत्त्वचिन्ता परो भव ॥18॥

अन्वयार्थ : [ततः त्वं] इस कारण तू [दोषनिर्मुक्त्यै] दोष-रहित होने के लिए [निर्मोहो भव सर्वतः] सभी-प्रकार से ममत्व-रहित होकर [उदासीनत्वम् आश्रित्य] उदासीनता का आश्रय लेकर [तत्वचिन्तापरः भव] आत्म-तत्त्व के चिन्तवन में तत्पर हो ।

हेय-उपादेय में निर्णय और कर्तव्य

हेयोपादेयतत्त्वस्य, स्थितिं विज्ञाय हेयतः ।
निरालम्बो भवान्यस्मादुपेये सावलम्बनः ॥19॥

अन्वयार्थ : [हेयोपादेयतत्त्वस्य] हेय और उपादेय तत्त्व के [स्थितिं] स्वरूप को [विज्ञाय] जान करके [अन्यस्मात् हेयतः] त्यागने योग्य का [निरालम्बः भव] आश्रय लेना छोड़कर [उपेये] ग्रहण करने योग्य (आत्म तत्त्व) का [सावलम्बनः] आलम्बन लो ।

भेद-ज्ञान पूर्वक उपेक्षा मुक्ति का कारण

स्वपरं चेति वस्तु त्वं, वस्तरूपेण भावय ।
उपेक्षाभावनोत्कर्षपर्यन्ते शिवमाप्नुहि ॥20॥

अन्वयार्थ : [इति] इस प्रकार [स्वपरंच] स्व (आत्म-तत्त्व) और पर (अन्य-वस्तु) की [त्वं] तू [वस्तुरूपेण] वस्तु-स्वभाव से [भावय] भावना करके [उपेक्षाभावनोत्कर्षपर्यन्ते] उपेक्षा (राग-द्वेष-रहितपना) भाव की पूर्ण वृद्धि हो जाने पर [शिवम्] मोक्ष को [आप्नुहि] प्राप्त कर ।

निज-आत्म-तत्त्व में आसक्ति भी मुक्ति में बाधक

तथाप्यतितृष्णावान्, हन्त! मा भूस्तवात्मनि ।
यावतृष्णा प्रभूतिस्ते तावन्मोक्षं न यास्यसि ॥21॥

अन्वयार्थ : [हन्त!] हे आत्मन्! [तथापि] ऐसा (आत्म-चिन्तवन) होने पर भी [त्वम् आत्मनि] तुम अपने विषय में भी [अति-तृष्णावान्]

अत्यन्त तृष्णा से युक्त [मा भूः] मत होना [यावत्] जब-तक [ते] तुम्हारे (अन्तस् में) [तृष्णा प्रभूतिः] तृष्णा की भावना उत्पन्न होती रहेगी [तावत्] तब-तक [मोक्षं न यास्यसि] मोक्ष नहीं पा सकोगे ।

यह कैसे

यस्य मोक्षेऽपि नाकांक्षा, सः मोक्षमधिगच्छति ।
इत्युक्तत्वाद्धितान्वेषी, कांक्षा न क्वापि योजयेत् ॥22॥
अन्वयार्थ : [यस्य मोक्षे अपि] जिसके मोक्ष की भी [आकांक्षा न] अभिलाषा नहीं होती [सः मोक्ष] वह मोक्ष को [अधिगच्छति] प्राप्त करता है इस कारण [हितान्वेषी] हित की खोज में लगे हुए व्यक्ति को [क्वापि] कभी कोई [आकांक्षा] आकांक्षा / इच्छा [न योजयेत्] नहीं करनी चाहिए ।

उपेक्षा मोक्ष देने में समर्थ कैसे है?

सापि च स्वात्मनिष्ठत्वात्सुलभा यदि चिन्त्यते ।
आत्माधीने सुखे तात, यत्नं किं न करिष्यसि ॥23॥
अन्वयार्थ : [सापि च] और वह (उपेक्षा-भावना) भी [स्वात्मनिष्ठत्वात्सुलभा] अपने-आप में लीनता के कारण सुलभ है [यदि चिन्त्यते] यदि ऐसा चिंतन करे तो [आत्माधीने सुखे तात] स्वाधीन सुख के लिए हे भाई ! [यत्नं किं न करिष्यसि] यत्न कौन नहीं करेगा ?

पुन: और भी आत्मा में प्रवृत्ति कराते हैं

स्वं परं विद्धि तत्रापि, व्यामोहं छिन्धि किन्त्विमम् ।
अनाकुलस्वसंवेद्ये, स्वरूपे तिष्ठ केवले ॥24॥
अन्वयार्थ : [स्वं परं विद्धि] स्व-पर को जानो [किन्तु तत्र अपि] परन्तु वहां भी [इमम्] इस (भेद-भावात्मक) [व्यामोहं छिन्धि] आसक्ति को दूर कर [केवले अनाकुलस्वसंवेद्ये] निरालम्ब निराकुलता रूप स्वानुभव से द्वारा [स्वरूपे] अपने रूप में [तिष्ठ] स्थिर हो जाओ ।

आत्म-तत्त्व की प्राप्ति में षट्-कारक स्वतंत्रता

स्वः स्वं स्वेन स्थितं स्वस्मै स्वस्मात्स्वस्याविनश्वरम् ।
स्वस्मिन् ध्यात्वा लभेत् स्वोत्थमानन्दममृतं पदम् ॥25॥
अन्वयार्थ : [स्वः स्वं स्वेन] आत्मा स्वयं को, स्वयं के द्वारा, [स्वस्मै] अपने लिए, [स्वस्मात्] अपनी आत्मा से, [स्वस्य] अपने लिए, [स्वोत्थं] अपने से उत्पन्न [अविनश्वरम्] अविनाशी [आनन्दामृतं पदम्] आनन्द-अमृत-मय पद को [स्थितं स्वस्मिन्] अपनी आत्मा में स्थित होकर [ध्यात्वा] ध्यान द्वारा [लभेत्] प्राप्त करो ।